ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218
PP. No.- 122-124
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-17, No.- I, Issues-31, YEAR- Jan.-March-2024

शिकागो के विश्व धर्म सम्मेलन में स्वामी विवेकानंद का दिव्य सन्देश

डॉ0 दिवाकर कुमार कश्यप
सोशल मीडिया, भाजपा बिहार, दर्शनशास्त्र में यूजीसी नेट जेआरएफ, धर्म के तुलनात्मक अध्ययन में यूजीसी नेट

Received-21.02.2024, Revised-29.02.2024, Accepted-02.03.2024 E-mail: aaryvart2013@gmail.com

सारांशः सन 1893 का विश्व धर्म सम्मेलन विशाल विश्व मेले का एक अंग मात्र था और अमेरिकी नगरों में इसके आयोजन को लेकर इतनी होड़ थी कि अमेरिकी नगरों में न्यूयॉर्क, वाशिंगटन, सेंट लुइस तथा शिकागो के संबंध में मतदान कराना पड़ा था, जिसमें अंततः शिकागो के पक्ष में बहुमत प्राप्त हुआ।[1] 11 सितंबर 1893 प्रारंभ होकर 17 दिनों तक चलने वाले इस धर्म सम्मेलन में प्रतिदिन विभिन्न देशों के धर्मशास्त्रियों एवं महत्वपूर्ण विद्वानों ने अपने विचारों को प्रस्तुत किया।

कुंजीभूत शब्द– हिंदू धर्म, व्यापकता, उदारता, विराट दृष्टि, आत्म तत्व, बोधगम्य स्वरूप, अपौरुषेय, हास्यास्पद, आविष्कृत।

स्वामी विवेकानंद ने अपने उद्बोधन में हिंदू धर्म की व्यापकता, उदारता एवं विराट दृष्टि के साथ–साथ उपनिषदों एवं गीता में वर्णित ब्रह्म और आत्म तत्व का एक सुस्पष्ट और बोधगम्य स्वरूप प्रस्तुत किया। स्वामी जी ने कहा कि हिंदू ने अपना धर्म अपौरुषेय वेदों से प्राप्त किया है। वेद अनादि और अनंत हैं। श्रोताओं को संभव है यह हास्यास्पद मालूम हो और वे सोचें कि कोई पुस्तक अनादि और अनंत कैसे हो सकती है, परंतु वेद का अर्थ है, भिन्न–भिन्न कालों में भिन्न–भिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक तत्वों का संचित कोष। जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत मनुष्यों के पता लगने के पूर्व से ही अपना काम करता चला आया था और आज यदि मनुष्य उसे भूल भी जाए तो भी वह नियम अपना काम करता ही रहेगा। ठीक वही बात आध्यात्मिक जगत को चलाने वाले नियमों के संबंध में भी है। एक आत्मा का दूसरी आत्मा के साथ, प्रत्येक आत्मा का परमात्मा के साथ जो नैतिक तथा दिव्य आध्यात्मिक संबंध है, वह हमारे पता लगने के पूर्व भी था और यदि हम भूल जाए तो अभी यह बने रहेंगे। इन नियमों एवं शक्तियों का आविष्कार करने वाले ऋषि कहलाते हैं और हम उनको पूर्णत्व को पहुंची हुई विभूति जानकर सम्मान देते हैं। श्रोताओं को यह बतलाते हुए मुझे हर्ष होता है कि इन अतिशय उन्नत ऋषियों में कुछ स्त्रियां थीं। हिंदू का यह विश्वास है कि वह आत्मा है। इस आत्मा को शास्त्र काट नहीं सकते, अग्नि दग्ध नहीं कर सकती, पानी आद्र नहीं कर सकता और वायु सुखा नहीं सकती। जिसके आदेश पर वायु चलती है, अग्नि दहकती है, बादल बरसते हैं और मृत्यु पृथ्वी पर इतस्ततः नाचती है।[2] हिंदुओं की अवधारणा है कि आत्मा एक ऐसा वृत है जिसकी परिधि कहीं नहीं है। यद्यपि उसका केंद्र शरीर में अवस्थित है और मृत्यु का अर्थ केवल इतना ही है कि एक शरीर से दूसरे शरीर में इस केन्द्र का स्थानांतरण हो जाना। यह आत्मा भौतिक नियमों के वशीभूत नहीं है। वह स्वरूपतः नित्य–शुद्ध–बुद्ध–मुक्त स्वभाव है, परंतु किसी अचिंत्य कारण से वह अपने को जड़ से बंधी हुई पाती है और अपने को जड़ ही समझने लगती है। श्वेताश्वेतर उपनिषद् में कहा गया है किय

श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतसर पुत्रा
आ में धामानि दिव्यानि तस्थुः।
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात।
तमेव विदित्वाअ्तिमृत्युमेति
नान्यः पन्ना विद्यतेअ्यनाय।।[3]

हे अमृत के पुत्रगण! हे दिव्याधामवासी देवगण! सुनो, मैंने उस अनादि पुरातन पुरुष को पहचान लिया है, जो समस्त अज्ञान, अंधकार और माया के परे है। केवल उस पुरुष को जानकर ही तुम मृत्यु के चक्कर से छूट सकते हो, दूसरा कोई पथ नहीं है।

स्वामी विवेकानंद ने ईसाई धर्म के साधकों के द्वारा स्वयं को 'पापी' मानने की प्रवृत्ति की प्रखर आलोचना करते हुए कहा कि ईश्वर से जीव का संबंध प्रेम का है, इसमें 'पापी' जैसी हीन भावना के लिए कोई स्थान नहीं है। स्वामी जी ने ईसाई धर्म की 'पाप' की अवधारणा की आलोचना करते हुए कहा, "अरे, तुम ईश्वर के अंश हो, उसकी संतान हो, क्या तुम पापी हो? तुम्हें पापी कहना भी पाप है। मानव स्वभाव पर यह एक लांछन है।" स्वामी जी के भाषण से ईसाई धर्म के कट्टरपंथियों को धक्का लगा, पर श्रोताओं को अत्यंत संतोष हुआ। पत्रिका ओपन कोर्ट की कविता के इस अंश से स्वामी जी के इस उद्बोधन के प्रभाव का पता चलता है।

"तब सुना मैंने उस हिंदू सन्यासी को
पहने केसरिया वस्त्र
जिसने कहा कि सारे मानव ईश्वर के अंश हैं
कम नहीं–पापी नहीं
मुझे सुन संतोष हुआ
सारा धर्म सम्मेलन भी प्रसन्न हो उठ
स्वामी के इन वचनों से"।[4]

यह धर्म सम्मेलन एक अन्य संदर्भ में भी अद्भुत था। इस सम्मेलन में अनेक ईसाई वक्ताओं ने भी भारत के प्रति अपनी अनन्य श्रद्धा अर्पित की थी। प्रथम दिन ही श्री बरोज साहब ने अपने स्वागत भाषण में भारत का उल्लेख करते हुए कहा– 'धर्मों की जननी भारतवर्ष', 'भारत की पवित्र नदियों का स्वच्छ जल', 'राजकुमार सिद्धार्थ के बौद्ध धर्म के शिष्यों, जो एशिया को प्रकाश प्रदान करते हैं,

अनुरूपी लेखक/संयुक्त लेखक

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-17, No.- I, Issues-31, YEAR- Jan.-March-2024

का स्वागत'। एक अन्य ईसाई वक्ता लेक फॉरेस्ट विश्वविद्यालय के प्रोफेसर रॉबर्ट्स ने अपने भाषण में कहा कि "ईश्वर की शक्ति का दर्शन सारी प्रकृति में होता है, पर हमारे जो मित्र भारत से आए हैं, वह इस विषय में हमसे अधिक गहराई में गए हैं।" रूस के सर्ज वोलिवुंस्की ने भी भारत की भूरि–भूरि प्रशंसा अपने भाषण में की। धर्माचार्य चेपिन ने प्राच्य देशों के प्रति श्रद्धा निवेदित करते हुए कहा, "पूर्व से आए बुद्धिमान सज्जनवृंद के चरणों के समीप बैठकर हमने शिक्षा ली है।" धर्म सम्मेलन के व्यवस्थापक जेन्किन ला लॉयड्स ने अगला धर्म सम्मेलन भारत के पुण्य–स्थल वाराणसी में होने की कामना की। धर्म सम्मेलन में भारत एवं हिंदू धर्म की ऐसी प्रतिष्ठा को देखकर स्वामी विवेकानंद का यह कथन, "यह धर्म सम्मेलन मेरे लिए हो रहा है और बहुत शीघ्र इस सत्य को तुम सब समझ लोगे", बिल्कुल सत्य प्रतीत होता है। सन 1893 में जब स्वामी विवेकानंद धर्म सम्मेलन के लिए गए तब तक वे भारत में भी एक अपरिचित सन्यासी ही थे। विश्व धर्म सम्मेलन ने ही उनकी ख्याति पूरे विश्व में फैलाई। स्वामी विवेकानंद प्रतिकूल परिस्थितियों में भी शिकागो पहुंचने में सफल हुए और सम्मेलन के प्रथम दिन एवं प्रथम भाषण से ही अमेरिकी जनता के ह्रदय सम्राट बन गए। इस प्रकार वर्ष 1893 का यह धर्म सम्मेलन भारत के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखता है। रामकृष्ण परमहंस ने कहा था, "मैं देख रहा हूं कि नरेंद्र समुद्र पार जा रहा है और मेरी पूजा विदेशों में हो रही है"।

स्वामी विवेकानंद ने छोटी–छोटी सभाओं में भारत एवं अमेरिका में भी भाषण अवश्य दिए थे लेकिन ऐसी वृहद सभा में पहली बार उपस्थित हुए थे। लेकिन जब वे बोलने के लिए खड़े हुए एवं उनके स्वर से चार शब्द निकले, 'अमेरिका निवासी बहनों और भाईयों', इन शब्दों का प्रभाव सारे श्रोताओं पर विद्युत सरीखा हुआ।[5] श्रीमती डीके प्रोजेक्ट लिखती है कि सारे 7000 श्रोतागण खड़े होकर करतल ध्वनि करने लगे। किसी को आभास नहीं हुआ कि वह क्यों करतल ध्वनि कर रहे हैं, क्यों यह इतनी श्रद्धा उमर रही है। बरोज एवं हाटन ने भी यही लिखा है। स्वामी जी ने स्वयं लिखा था कि कई मिनट तक तालियां से सभागार गूंजता रहा। स्वामी विवेकानंद ने धर्म सम्मेलन को संबोधित करते हुए कहा कि मुझको ऐसे धर्मावलंबी होने का गौरव है, जिसने संसार को 'सहिष्णुता' तथा सब धर्मों को मान्यता प्रदान करने की शिक्षा दी है। सांप्रदायिकता, संकीर्णता और इससे उत्पन्न भयंकर धार्मिक उन्माद हमारी इस पृथ्वी पर काफी समय तक राज कर चुकी है। उनके घोर अत्याचार से पृथ्वी थक गई है। इस उन्माद ने अनेक बार मानव रक्त से पृथ्वी को सींचा है। सभ्यताएं नष्ट कर डाली है तथा समस्त जातियों को हताश कर डाला है। यदि यह सब न होता तो मानव समाज आज की अवस्था से कहीं अधिक उन्नत हो गया होता पर अब उनका भी समय आ गया है। स्वामी जी ने कहा कि हम सब लोग सब धर्म के प्रति केवल सहिष्णुता में ही विश्वास नहीं करते वरन् समस्त धर्म को सच्चा मानकर ग्रहण करते हैं। आपसे यह निवेदन करते हुए मुझे गर्व हो रहा है कि मैं ऐसे धर्म का अनुयायी हूं, जिसकी पवित्र भाषा संस्कृत में अंग्रेजी शब्द 'एक्सक्लूजन' का कोई पर्यायवाची शब्द नहीं है। मुझे एक ऐसे देश का व्यक्ति होने का अभिमान है, जिसने इस पृथ्वी की समस्त पीड़ित और शरणागत जातियों तथा विभिन्न धर्मों के बहिष्कृत मतांबलबियों को आश्रय दिया है। मुझे यह बतलाते हुए गर्व हो रहा है कि जिस वर्ष यहूदियों का पवित्र मंदिर रोमन जाति की अत्याचार से धूल में मिला दिया गया, इस वर्ष कुछ अभिजात यहूदी आश्रय लेने दक्षिण भारत में आए। हमारे धर्म ने उन्हें अपनी छाती से लगाकर शरण दी। ऐसे धर्म में जन्म लेने का मुझे अभिमान है, जिसने पारसी जाति की रक्षा की। मैं आप लोगों को शिव महिम्न स्त्रोत के कुछ पद सुनाता हूँ।

रुचिनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषाम् ।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इन।।

"जैसे विभिन्न नदियां भिन्न–भिन्न स्थानों से निकलकर समुद्र में मिल जाती हैं, उसी प्रकार हे प्रभो! भिन्न–भिन्न रुचि के अनुसार विभिन्न टेढ़ें– मेढ़ें अथवा सीधे रास्ते से जाने वाले लोग अंत में तुझमें आकर मिल जाते हैं।"

धर्म सम्मेलन में कई ऐसे वक्ता भी थे, जिन्होंने इस्लाम अथवा ईसाई धर्म की सर्वश्रेष्ठता को स्थापित करने का प्रयास किया। उनके इस प्रयास पर स्वामी विवेकानंद ने कहा कि कुएं के मेंढक के लिए कुएं से बढ़कर कोई वस्तु नहीं हो सकती, इससे बड़ा कुछ नहीं हो सकता। अमृतपुत्रों, ऐसी संकीर्णता ही हम लोगों की विभिन्नता का कारण है। मैं हिंदू हूं और अपने छोटे कुएं में बैठा यही मानता हूं कि मेरा कुआं ही सारा जगत है। ईसाई जन अपने क्षुद्र कुएं में बैठे यही समझते हैं कि संपूर्ण जगत उसी कुएं में समाया हुआ है। मुस्लिम अपने तुच्छ कुएं में बैठे उसी को सारा संसार मानते हैं।

धर्म सम्मेलन के 16वें दिन 26 सितंबर, 1893 को न्यू हेवन के आर. ए. ह्यूम ने हिंदू के संदर्भ में अपना उद्‌बोधन दिया। उन्होंने कहा कि जब ईसाई और हिंदू विचारधारा के लोग भारत वर्ष में सर्वप्रथम संपर्क में आए तो दोनों ने ही एक दूसरे को नहीं समझा। ईसाइयों ने हिंदू धर्म को सीमित अर्थों में ही देखा। उन्होंने मूर्ति पूजा, अनेक देवताओं में विश्वास, पौराणिक कथाएं, विभिन्न जातियों में बंटा समाज, चारों तरफ फैला हुआ गहरा अज्ञान ही देखा और इस निर्णय पर पहुंच गए कि यही सारा हिंदू दर्शन है। हिंदू मस्तिष्क अत्यधिक अंतर्मुखी है। अपनी चक्षुओं को अंतर्मुखी कर हिंदू ने इन तीनों लोकों को समझने का प्रयास किया। उसकी कल्पना शक्ति रहस्यवादी विचार बाह्‌ प्रयोगों पर निर्भर नहीं करती बल्कि हिंदू की भौतिक क्षमता अंतर्मुखी होने में इस दिशा में अद्‌भुत है। हिंदू मस्तिष्क बाह्‌ प्रयोग की परवाह नहीं करता, वह आंतरिक शक्ति को ही आदर्श मानता है। हिंदू मस्तिष्क की एक दूसरी विशेषता है कि वह सब जगह एकत्व देखना चाहता है, दो विरोधी वस्तुओं को देखकर भी विश्वासपूर्वक कहता है कि मूल रूप से हुए एक ही है। अब ईसाई भी हिंदू धर्म के इतिहास और आधुनिक हिंदू धर्म को समझने लगा है। जब तक हम इतिहास की गहराइयों में नहीं जाएंगे, तब तक पूर्ण ज्ञान नहीं होगा।

धर्म सम्मेलन समाप्त होने के पश्चात इसकी रिपोर्ट 1600 पन्नों में छपी थी। इसके प्रथम अध्याय का शीर्षक है, 'सम्मेलन का इतिहास'। इसकी कुछ पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि धर्म सम्मेलन की प्रेरणा भारत से ली गई थी– "सन् 1893 के विश्व मेले में

पहली बार धर्म को उचित महत्व दिया गया। हिंदू साहित्य अलौकिक इंद्रियातीत अनुभवों से भरा पड़ा है। यूरोप की कला चाहे वह यूनान की मूर्तियों में हो या गोथिक शैली के गिरजाघरों में, अमेरिका के स्वाधीनता की भावना और आधुनिक इतिहास में सामाजिक न्याय के लिए संघर्ष, यह स्पष्ट हो गया है कि धर्म, शिक्षा, कला ये सब अध्ययन के विषय हैं।"

धर्म सम्मेलन में निम्नलिखित दस उद्देश्य रखे गए :

1. इतिहास में प्रथम बार विश्व के महान ऐतिहासिक धर्म के नेताओं को एक मंच पर आमंत्रित करना।
2. जनता के सामने प्रभावशाली रूप में उन सत्यों को प्रकाशित करना।
3. बाह्य एवं औपचारिक रूप से प्रत्येक धर्म के स्वाधीन अस्तित्व पर आघात किए बिना भिन्न–भिन्न धर्मों के आचार्यों में समस्त मानव जाति में भ्रातृत्व की भावना की जड़ों को मजबूत कर एक दूसरे को समझने का प्रयास करना।
4. प्रभावोत्पादक वक्ताओं द्वारा अपने–अपने धर्म के महत्वपूर्ण सत्य को प्रकाशित करना तथा ईसाई धर्म के मुख्य शाखों का विश्लेषण करना।
5. विश्व के भौतिकवादी दर्शन का विरोध करने वाली विभिन्न संस्थाओं को बल प्रदान करना तथा मानव के अमरत्व के मूलभूत कारण को जनता को समझाना।
6. ब्राह्मण, बौद्ध, कन्फ्यूशियस, पारसी, मुसलमान, यहूदी तथा अन्य धर्मों व ईसाई धर्म की भिन्न–भिन्न शाखाओं से विस्तृत एवं प्रामाणिक सूचना प्राप्त करना कि उनके धर्म का साहित्य, कला, वाणिज्य, सरकार, समाज, घरेलू जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा है?
7. यह जानकारी प्राप्त करना कि वक्ता का धर्म अन्य धर्मों पर क्या प्रभाव डाल सकता है?
8. स्थाई साहित्य का योग्य, सही एवं आधिकारिक वर्णन प्रकाशित कर महत्वपूर्ण राष्ट्रों में धर्म की वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालना।
9. वर्तमान समाज के संयम, श्रम, शिक्षा, संपत्ति एवं गरीबी से संबंधित प्रश्नों पर योग्य आचार्यों से धर्म का प्रकाश डलवाना।
10. समस्त राष्ट्रों में एक सौहार्दपूर्ण वातावरण उत्पन्न कर विश्व में स्थाई शांति का प्रयास करना।

यद्यपि विश्व धर्म सम्मेलन के संबंध में यह कहना कि इतिहास में प्रथम बार इस तरह के महान प्रयास किए गए हैं, उचित नहीं है। इस संबंध में महाबोधि सोसाइटी के श्री धर्मपाल का उद्बोधन यह स्पष्ट करता है कि वैश्विक एवं व्यापक स्तर पर धर्म सम्मेलन का आयोजन भारत में पूर्व में भी हो चुका था। श्री धर्मपाल कहते हैं कि आज से 2000 वर्ष पहले ऐसे ही धर्म सम्मेलन का आयोजन सम्राट अशोक ने पाटलिपुत्र में आयोजित किया था, जिसमें सहनशीलता की उदात्त शिक्षा का प्रचार किया गया और उनके राज्य के चारों ओर इन शिक्षाओं को शिलालेखों में अंकित कर लगाया गया। उसका यहां एक उदाहरण दिया जा रहा है– "देव ऋषि राजा सब धर्मों का सम्मान करते हैं, अपने धर्म के प्रति पूरी श्रद्धा रखते हैं पर दूसरे धर्मालंबियों के प्रति निंदा या उनकी क्षति करने की भावना बिल्कुल नहीं रखते हैं। जो अपने धर्म का आदर करता है और दूसरों की निंदा करता है, वह अपने धर्म के रास्ते में ही कठिनाइयां उत्पन्न करता है और उसका यह व्यवहार उचित नहीं है।" स्वामी विवेकानंद का विश्व धर्म सम्मेलन में दिया गया उद्बोधन एवं उसका प्रभाव केवल भारत के लिए ही नहीं बल्कि पूरे विश्व और मानव कल्याण की दृष्टि से आज भी सुधी लोगों के लिए विमर्श का विषय है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. 'Swami Vivekanand in Chicago -New Discoveries', आशिम चौधरी, पृष्ठ 52–53.
2. कठोपनिषद, 2 । 3 । 3.
3. श्वेताश्वेतर उपनिषद, 2–5,3–8.
4. 'Swami Vivekananda in the West' - Louis Burke, Vol. 1, Page 109.
5. 'New Discoveries', - Louis Burke, Page 142.

*****